आचार्य समन्तभद्र रत्नकरण्डश्रावकाचार में वर्णित श्रावकाचार का स्वरूप

बेबी कुमारी
डॉ० सी०डी० राय

जैनधर्म में श्रावक और श्रमण दोनों की साधना का विस्तार से निरूपण है। श्रावकधर्म को संयतासंयत, देवविरति और देशचारित्र कहा है। वह गृहस्थाश्रम में रहकर गृहस्थ के कर्तव्यों का पालन करता हुआ अणुव्रतरूप एकदेशीय व्रतों का पालन करता है।

जैन साहित्य में श्रावक शब्द के दो अर्थ प्राप्त होते हैं। प्रथम 'श्रु' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– सुनना। जो श्रमणों से श्रद्धापूर्वक निर्ग्रन्थ प्रवचन को श्रमण करता है, तदनुसार यथाशक्ति उस पर आचरण कराने का प्रयास करता है, वह श्रावक है। श्रावक शब्द से प्रायः यही अर्थ ग्रहण किया
जाता है।

श्रावक शब्द का दूसरा अर्थ ''श्रा–पाके'' धातु के आधार से किया जाता है। प्रस्तुत धातु से संस्कृत रूप श्रावक बनता है। पर श्रावक शब्द की अर्थसंगति श्रावक शब्द के साथ नहीं बैठती है। संभव है, श्रावक से यह तात्पर्य रहा हो– जो भोजन पकाता है। भ्रमण शिक्षा से अपना जीवन निर्वाह करते हैं, किन्तु श्रावक गृहस्थाश्रमी होने से भोजन आदि पकाता है।

अक्षरों के आलोक में एक आचार्य न श्रावक शब्द के तीनों अक्षरों पर गहराई से चिन्तन करते हुए लिखा है कि ये तीनों अक्षर श्रावक के पृथक्–पृथक् कर्तव्य का बोध करते हैं।